# मेरा सपना

(खड-काव्य)

लेखक

श्री चन्द्रदत्त अवस्थी "निर्गुण"

प्रकाशव

जिज्ञासा प्रकाशन,

पुस्तक    मेरा सपना (काव्य)

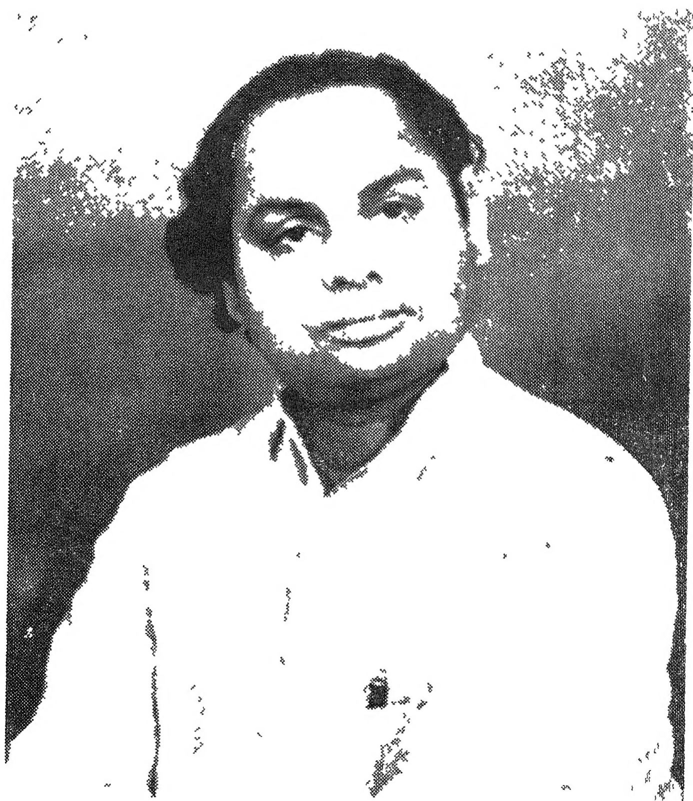
लेखक    "निर्गुण" अवस्थी

प्रकाशक    जिज्ञासा प्रकाशन, कानपुर

आवरण    श्री भास्कर भाई

मुद्रक    रामनाथ गुप्त,
छाया प्रेस, आर्यनगर,
कानपुर।
टेलीफोन    ३३५४८

मूल्य . चार रुपये केवल



निर्गुण अवस्थी

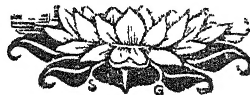
पूज्य पिताश्री

# स्वर्गस्थ पं० शिवशंकरलाल अवस्थी

के

श्रीचरणों में सादर समर्पित

विद्युत अवस्थी



# आशीर्वाद !



'मेरा सपना' नाम की आपकी काव्य-पुस्तक पढ़ गया हूँ। आपने इस खण्ड-काव्य मे सीता-स्वयंवर के अवसर पर होने वाले किसी महत्वपूर्ण सम्मेलन की कल्पना की हैं और उसीका आधार लेकर यह सुन्दर काव्य लिखा हैं, जिसमें आज के मानवतावादी तथ्य भरपूर आए है। आपकी सीता-स्वयंवर के समय की यह सम्मेलन-कल्पना ऐतिहासिक हो या न हो, तात्विक अवश्य है और यह आपकी भावात्मक विचारधारा के विन्यास के लिए सुन्दर आधार का काम कर सकी हैं। आपके अध्याय-क्रम सुचिन्तित और गतिपूर्ण है। आपका वस्तु-निरूपण सुगठित और अन्वितिपूर्ण हैं। आपका काव्यात्मक स्तर किसी प्रौढ़ कवि के उपयुक्त है। आपकी काव्य भाषा आपके वर्ण्य विषय के उपयुक्त प्रौढ़ और प्रांजल होती हुई भी सहज गतिशील हैं।

इस काव्य-प्रणयन के लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिये। मुझे आशा है कि आधुनिक काव्यधारा में आपकी यह कृति एक सुन्दर जलयान की भांति अनेक काव्य-पथिकों की आश्रय बनेगी।

—नन्ददुलारे वाजपेयी

१–३–६५ अध्यक्ष–हिन्दी विभाग

# कवि निर्गुण और उनका 'सपना'

वर्षों पहले डी० ए० वी० कालेज, कानपुर, मे आयोजित एक कवि-सम्मेलन में, मैंने एक युवक की पौरुष-प्रभा-पूर्ण रचना सुनी। उक्त रचना मे कुछ ऐसा ओज था, वाणी मे कुछ ऐसा दर्द था, शैली मे कुछ ऐसा प्रभाव था कि हृदय अपने आप उस पर मुग्ध होगया। मैंने उस युवक को जरा ध्यान से देखा : परम सौम्य, किंचित् दीर्घ केश, उन्नत ललाट, गठीला शरीर, गम्भीर मुखाकृति, तरल नयन, सभी से ऐसा लग रहा था मानो इस व्यक्तित्व का सिरजन विधाता ने किसी विशेष उद्देश्य से किया है। मच पर बैठे हुये कवियो में मुझे उसका व्यक्तित्व कुछ अलग-सा प्रतीत हुआ, उसकी वाणी मे नवीन मानव का आह्वान था, उस मानव का जो इस दु:ख-दैन्य से निदलित धरती को स्वर्ग का रूप दे सके। परिचय न होते हुए भी मुझे वह परिचित-सा लगा, उसकी कविता के बोल मेरे मानस की लहरियो मे घुल-मिल गये और मै अनजान मे ही उसका प्रशसक बन गया।

समय बीतता चला गया। एक दिन सहसा डेवलपमेंट बोर्ड (अब नगर-महापालिका), कानपुर में इसी युवक से मेरी भेंट होगई। साथ के जिन कुछ मित्रो ने शिष्टाचारवश मेरा परिचय इस नये साथी से कराया, उन्हे यह पता नही था कि मेरा हृदय वर्षों पहले उसके मनोरम व्यक्तित्व से परिचित होचुका था। यह बात मैंने किसीसे कही नही और इस अवसर का पूरा उपयोग मैंने उससे परिचय प्राप्त करने मे किया। पाठक समझ गये होगे कि यही हैं मेरे उक्त युवक मित्र श्री निर्गुण जी, जिनकी लेखनी का प्रसाद हमे भाव-काव्य "मेरा सपना" के रूप मे प्राप्त हुआ है।

श्री निर्गुण जी के नेत्रों मे सवेदनशीलता तैरती-सी दीखती है। उनके भावप्रवण मानस मे जगत् की वर्तमान गतिविधि जिस प्रकार की लोल लहरियाँ उठाती है, वे उन्हे पकडने की चेष्टा मे निरत है। उनके हृदय की निश्छल सरलता जब इन लहरियों के कौटिल्य जाल को देखकर प्रकम्पित हो उठती है, हिसा तथा प्रतिहिंसा के चतुर्दिक् परिव्याप्त एव वृद्धिगत वातावरण को निरख कर भावी की आशका से तड़प उठती है और जब असहाय मानवता के दारुण क्रन्दन को सुनकर अश्रु-विगलित होउठती है, तब वह अगर उस द्वन्द्वातीत "मेरा सपना" के अनुसन्धान की भावना मे रम जाय, तो आश्चर्य ही क्या है ?

कुछ ऐसे प्रश्न तो है, जिन्हे मानव सनातन-काल से पूछता आया है; "कस्त्वं, कोऽहं, कुत आय त (तू कौन है, मै कौन हूँ, कहाँ से आना हुआ है ?) के उपनिषत्कालीन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर अभी तक प्राप्त नही होसका। अब तो ससार का रूप और भी अधिक जटिल होचुका है; हिसाशास्त्र सम्पूर्ण रूप से विकसित हो चुका है और उसमें मानव का रूप सर्वथा खोगया है। अस्थिर मनोवृत्तियो ने उसे इस सीमा तक अपना दास बना लिया है कि वह स्वय नही बता सकता कि वह कब कौन "मार्ग" ग्रहण करेगा। मानवता का प्रकाश एव आत्मा का तेज किसी घनघोर विकराल अन्धकार मे विलुप्त होगया है। तमसाकार प्रतिपल वर्धनशील इस अजगर ने जैसे अपने प्रचंड प्रश्वास से सभी ग्रहणीय, वरणीय एव वन्दनीय तत्वो को उदरस्थ कर लिया है और अब जब उसके पोषण के लिये कोई पदार्थ अवशिष्ट नही दिखाई पड़ रहा है, तब वह असहनीय क्षुधा एवं तृषा से भीषण हुकार करता हुआ विष की प्रखर ज्वालाओ से ही वायुमंडल को लहरा रहा है। कैसी भीषण एव विकराल अवस्था है यह ?

आज का युग गर्व के साथ यह दावा कर सकता है कि उसने वैज्ञानिक उत्कर्ष की अद्भुत् उपलब्धिया जगत के सम्मुख उपस्थित कर दी है। मानव सुख के यान्त्रिक तथा मौखिक साधनो की आज कमी नही है। दैत्याकार एव सूक्ष्मातिसूक्ष्म मशीनों की कृपा से वस्त्रो का अम्बार लग रहा है, गगनचुम्बी वातानुकूलित दर्शनीय भवनों की अट्टालिकायें ऊर्ध्वोन्मुख होकर गगन की तारिकाओ का स्पर्श-सी करती दीखती हैं; वसुन्धरा अपने गर्भस्थ बहुमूल्य पदार्थों को, न केवल नाना षट्रस व्यजनो, खाद्य पदार्थों तथा मधुतिक्त

फलादिकों को, प्रत्युत स्वर्ण रजत, लौह, तैल, पैट्रोलियम, विभिन्न वर्ण-रंजित हीरा, पन्ना जैसे अनमोल एव दुर्लभ मणि-मुक्ताओ को भी अनायास सर्वशक्तिशाली मानव के सम्मुख बिखेरती जारही है। समाचारपत्रो से दुनिया पटती जारही है; रेलगाडियो वायुयानों, जलयानो, मोटरो आदि वाहनो ने ससार को कन्दुक के समान बना दिया है, सारी दूरी मिट-सी गई है। इतना ही नही, आज के मानव का दुस्साहस तो देखिये—वह भूमि एवं जल की गहनता तथा अन्तर को नाप लेने के बाद अब चन्द्र तथा सूर्यादिक लोकों की कठिनतम यात्रा के प्रयत्न मे भी तल्लीन होगया है। टेलीफोन, लाउडस्पीकर, रेडियो तथा टेलीविजन श्रव्य तथा दृश्य जगत के अद्भुत प्रसाधन बनकर उपस्थित है। हम विद्युत युग से अणु युग मे पहुच गये है; आज मानव ने नटराज शिवशकर की सहारशक्ति को सम्प्राप्त कर लिया है। मिनटो मे ही इस विस्तृत भूखड को, युग-युग से सचित, प्रवर्धित एव सयोजित सभ्यता तथा सस्कृति के विविध एव अनुपम वैभवों के साथ, भाप के धुये की तरह, एक भीषण प्रज्ज्वलित विस्फोट मे परिणत कर उसे शून्याकाश मे विलीन किया जासकता है। महाप्रलय के ताडव की यह मुद्रा आज मानव की मुट्ठी में बन्द है। जिस क्षण वह अपने तृतीय नेत्र से कोपानल की शिखाएँ प्रसारित करने का उपक्रम करेगा, उसी क्षण निखिल विश्व-मडल का स्पदन सदा के लिये बन्द होजायेगा और हमारा यह हरा-भरा ललित लताओ से सौरभित, भाति-भाति के मनोरम पुष्पों से समलकृत, सत्य शिव सुन्दरम् की ऊर्ध्वगामी सस्कृतियों से उद्भासित काव्य कला एवं साहित्य की कोमलकान्त तथा रस-सिक्त सुकृतियो से अनुरजित, आश्चर्यकारिणी वैज्ञानिक उपलब्धियो से समन्वित, महान् आध्यात्मिक उत्कर्षों एव दार्शनिक विचारधाराओं के अक्षय स्रोत से अभिसिंचित, अनुभूत तथा अपौरुषेय ज्ञान एवं विद्या के भंडार से विमडित, मानव सभ्यता के नाना विकास क्रमो तथा युग-युग की प्रगतियों से परिप्लावित, प्रकृति के मधुर सुधा-दान से सुस्निग्ध तथा विधाता की सर्वोत्कृष्ट रचना मानव एव मानवी की कलित क्रीड़ाओ से विभूषित, शस्य-श्यामल-फल-भारावनत यह ससार उल्का की धूलि की तरह उड़ जायेगा।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि आज मानव किस विकराल स्थिति में पहुंच गया है। वह या तो अब अतरिक्ष यात्रा ही करेगा अथवा अपने ही हाथो भस्मसात होने का गौरव प्राप्त करेगा; शायद बीच का अब कोई मार्ग अवशिष्ट नही रहा!! हिंसा अब

अपनी पराकाष्ठा पर है। मौत का पजा प्रतिक्षण सृष्टि के गले को कसता ही जारहा है। उसके चरणो का त्रासदायक प्रक्षेप प्रत्येक मानस मे भूकम्प उत्पन्न कर रहा है। अब तो इस बात का भी भय है कि अणु आयुधो की विध्वस-शक्ति न केवल इस लोक को, प्रत्युत अखिल ब्रह्माड को विनष्ट करने मे सक्षम है। अणुबम तथा उद्जन बम, प्रक्षेपणास्त्र तथा दूरगामी राकेट सभी मे मारण उच्चाटन के आसुरी बीजमत्रो का अचूक उद्घाटन है।

अद्भुत् युग आगया है यह! भौतिक तथा वैज्ञानिक समृद्धि सीमातीत है। जन साधारण नारकीय यत्रणाओ मे लघु कीट-सा असहाय एव विवश किलबिल कर रहा है। मानव की आतरिक शक्ति जैसे खोगई है, आडम्बर ही सब कुछ बन गया है, वास्तविकता तिरस्कृत होगई है। मानव के चलने उठने बैठने तथा दौडने की स्वतन्त्रता नष्ट होगई है, किसीके इशारे पर यत्र की तरह वह उठता बैठता है। हृदय ऊष्मा के विना स्पन्दित होरहा है। ज्योतिष्को के पार देख सकने की क्षमता रखने वाले नेत्र आज चश्मे के सौदर्य से भले ही मडित हो, पर वस्तुत: वे निष्प्रभ होगये है। कहाँ है वह हमारी कार्यनिष्ठा, जिसे देखकर हिमालय का गर्वोन्नत शिखर भी विभ्रम से झुक जाता था? कहा है हमारी वह श्रमशीलता एव तपश्चरण की गरिमा, जिसकी उग्रता को देखकर ब्रह्मादिक देवगण भी सहम जाते थे? आज हमारे आचरणो के पख कट गये है और विकलाग बने हम मानव भूलुठित होकर कराह रहे है। हमारे प्राणो से जीवन ही निकल गया है, वाणी की अमोघ शक्ति ही बिखर गई है, हमारे रोने एव हँसने से ऐसी एक भी लहर नही उठती, जो मानस का सस्पर्श कर सके। हमारी गति मे न हड़कम्प है और न बाधाओ को चुनौती देने की शक्ति; हमारे भ्रू-निक्षेप तलवार की कुण्ठित धार से भी गये बीते है, हमारे रोम रोम से जीवन का वह प्रकाश कहाँ फूटता है, जो ससार के सघन तिमिर को भी तिरोहित करने मे समर्थ होता रहा है। हमारे हृदय की करुणा आँसुओं का वह रूप नही ग्रहण कर पाती, जो विश्व-विधाता को भी विगलित तथा द्रवित कर देने मे समर्थ होती रही है। हमारे कार्यो मे न तड़प है, न कसक है, न कलक है, श्रद्धा और आस्था की सरस्वती मरुस्थली में खो-सी गई है। तर्कों के कोरे जंजाल मे फँसा मानव ईर्ष्या, द्वेष, मद-मत्सर, पाखड, माया-मोह, लोभ, काम, अह, दम्भ तथा दानवीय विकारो के पाश मे तड़फड़ा रहा है। मानवता के विकास की कैसी दुर्दान्त वेला है यह। मन वचन तथा कर्म सभी विषमता के पंक मे लथपथ सिर धुन रहे है। यत्रो की इस कारीगरी मे मनुष्य मूक

"गुडिया" मात्र बन कर रह गया है। न स्पन्दन है, न जीवन। इसीलिये श्यामल मेघमालाओं को देखकर हमारा मन मयूर थिरक नही उठता, वर्षा की अविरल रसधार से हमारा हृदय सराबोर नहीं होउठता, बिजली की कौंध से हमारी रगो का लहू उछाले नही मारने लगता, इन्द्रधनुष की आभा हमारे सपनो मे रग नही भर पाती और हमारा मुग्ध मानस मेघ-वाहन देवराज के चरणो पर समर्पित नही होपाता।

जिस प्रकार हम शारदीय सुषमा, दुग्ध-धवल पीयूषवर्षिणी शीतल चन्द्रज्योत्स्ना तथा वासन्तिक सुरभि-सनी मदिर मन्द मलयानिल से मजरित कुसुमित एव विकसित हृदय-हारिणी छटा मे आत्मविभोर हो, सौंदर्य की आराधना तथा पूजा मे निरत नही होपाते, उसी प्रकार हम असह्य ग्रीष्म तथा शीत की अतिशय क्लेशदायिनी घटिका मे पौरुष की ललकार को भी नही सुन पाते। बाधाएँ तथा कठिनाइयाँ हमारे रक्त को चुनौती नही देती। श्वेताभ हिम-धवल गगनचुम्बी महान शिखरो का आह्वान हम नही सुन पाते, समुद्र तथा धरती की अनन्त पुकारे हमारे श्रवण-रन्ध्रों मे नही प्रविष्ट होपाती। किसीका करुणा-विगलित आनन हमारे हृदय को झकझोरता नहीं, किसीकी धसी हुई आंखे हमारे मानस को उद्वेलित नही करती, क्षुधा से विकल नगे जर्जर मानव-शिशुओ को नालियो तथा अपावन स्थानों से उच्छिष्ट निकृष्ट अन्न के दाने बीनते हुये देखकर हम हाहाकार नही कर उठते; नाना अभावो, अज्ञानो, जडताओ तथा रूढियो मे डूबे मानव-समूह हमे कर्तव्य की प्रेरणा नहीं देते और प्रतिदिन प्रतिक्षण असमय मे ही मुरझाते हुए होनहार जीवन-प्रसूनो को देखकर भी हमारे हृदय का "बुद्ध" जीवन के चरम सत्य का दर्शन नही कर पाता।

हमको हो क्या गया है ? कुछ भी तो समझ मे नही आता। वह देखो ईसा अपने क्रास मे आबद्ध रक्त से स्नात क्षमा की शोभनीय मुद्रा मे देवत्व का वरण कर रहा है ! वह देखो सुकरात जहर के प्याले को पीकर नीलकठ के समान मृत्यजय बनकर मुस्करा रहा है, वह देखो तथागत बुद्ध करुणा, प्रेम तथा मैत्री की वशी बजाते हुये जड-जगम को विमोहित कर रहा है और अहिंसाऽमृत मे जगत् के मस्तक को अभिषिक्त कर रहा है। विश्व के वलिदानियो का शाहन्शाह अभी १७ वर्ष पहले इसी भारत भूमि पर हमारे साथ हमारे कष्टो का गरल पीकर विचरण करता रहा है और हिसा-पीडित विश्व को अहिसा, शान्ति तथा प्रेम का ब्रह्मास्त्र देकर गया है। उस विश्वात्मा महामानव राष्ट्रपिता गाँधी

के वक्षस्थल पर लगी हुई गोलिया हमारे मानस को झकझोरती क्यो नही, विकल क्यों नही बनाती और हम तडप कर उठ खडे क्यों नही होते ? हाय, शत शत अमर हुतात्माओ के उत्सर्ग भी आज हमारे मानस के रक्त मे उबाल नही पैदा कर पाते। युगद्रष्टा कबीर की अन्धकार-विदारिणी वाणी हमारे अजगर-से प्रसुप्त मानस को तनिक भी उद्भासित नही करती, सूरदास तथा तुलसीदास जैसे महाकवियो का "अमृत स्रोत" अजस्रवेग से आज भी निर्झरित होरहा है, पर यह कैसा दुर्भाग्य है कि उसका एक बूंद भी हमारे आचरणो मे प्रतिविम्बित नही होपाता। सद्गुरु नानक, महिमामयी मीरा, भक्तशिरोमणि रैदास जैसे सिद्धा आत्माओ के वचन हमारे अन्तर की असुर वृत्तियो के उच्छेदन मे असमर्थ हो शिर धुन रहे हैं। न्याय और सत्य की हत्या हम रोज होते देखते है, पर हमारे भीतर वह साहस, वह पराक्रम, वह पौरुष नही उत्पन्न होपाता, जो इनकी रक्षा के लिये अभीष्ट है; हमने चारो वेदों के सत्य तथा ऋषियो के पुनीत ज्ञान का दर्शन कर लिया है, हमारे मुख से वेदो की ऋचाये निकलती हैं, ऋषियो के मत्र उच्चरित होते है, उपनिषदो के अनुभूत तत्व, हमारी वाणी तथा मानस मे प्रतिपल उद्भासित होते हैं, विश्व के समस्त दार्शनिकों के ज्ञान को घोट कर हमने पी लिया है। साहित्य और कला के अध्वर्यु बनकर हमने युगान्तरकारी रचनाओं की सृष्टि की है, विज्ञान के हम प्रमाण है और आध्यात्मिक शक्ति के हम भडार हैं। अपनी यौगिक साधनाओ द्वारा हम कुडलिनी को जगाने तथा सहस्रदल कमल के खिलाने मे समर्थ हैं और भी कितनी ही सिद्धियां हमने प्राप्त की है। गौरव के सभी लक्षण हममे प्रकट होरहे है, पर हाय कैसी विडम्बना है यह कि सब कुछ देकर भी विधाता ने सदाचरण की निर्भीकता हमे नही दी। अन्याय हमारे सामने हँसता है और हम सिर झुकाकर मौन रह जाते है, भ्रष्टाचार हमारे सामने पनपता है और हम स्वयं अपने हाथ उसमे रग लेते है, दुराचार वासना के सम्मोहक खेल हमारे सामने खेलता है और हम खरीदे हुये गुलाम की तरह उसे सहन कर आखे मूंद लेते है। हमारा ज्ञान और दर्शन जहां का तहा अपना माथा पीटते रहते है। हिसात्मक प्रतिद्वन्द्वात्मक शस्त्रो की चरम परिणति है यह। इसमे मानव का ऊर्ध्वगामी प्रेरक स्वरूप नष्ट होगया है और वह सर्वथा विकारों का दास बन गया है। आज वह यह भूल गया है कि समस्त प्राणियो मे वह सर्वश्रेष्ठ है और वह सर्वश्रेष्ठ इसीलिये है कि उसमे दया, प्रेम, करुणा, ज्ञान, विवेक, भ्रातृत्व, शान्ति, सहयोग आदि दिव्य भावनाओ के उत्सर्गशील तत्व सन्निहित है। सर्वभूत दया मानवता के श्रृंगार का चरमोत्कर्ष है। इन गुणो मे विना वह चतुष्पद बर्बर हिंसक जन्तुओ से भी

बदतर प्राणी बन कर रह जाता है। मानव ने आज दुर्वृत्तियों के ज्ञान-पूर्वक संगठन एवं प्रोत्साहन का व्रत लिया है; सत्य का रूप प्रदर्शित कर वह मिथ्या के विविधवर्णी सर्वोन्नत शिखर पर समासीन है, जहाँ से वह अपने से अन्य प्राणियों तथा मनुष्यों को चीटीं से निकृष्ट तथा अधम समझकर उनके निर्दय शोषण एवं दोहन को ही अपना धर्म मान बैठा है। इस स्थिति ने ही आज मानव को अशान्ति के गड्ढे मे ढकेल रखा है। ईश्वर, सत्य, भाग्य सब उसके स्वार्थ-साधन के वाहन मात्र बन कर रह गये है। आज सारा संसार नानापक्षो, संघो, संगठनो, गुटो एव दलो मे बट गया है। इनमें भी चक्रान्तर्गत चक्र चलते रहते है। परस्पर अविश्वास तथा सन्देह ही इस असुर सभ्यता के मूलाधार है। इस युग मे जो व्यक्ति जितना ही अपने को "सत्यवान" बनने का "भ्रम" उत्पन्न करने मे सफल होजाता है, वह उतना ही सुयोग्य, सक्षम, प्रभावशाली तथा लक्ष्य-सिद्ध पुरुष की संज्ञा पा जाता है। इसका विघटनकारी परिणाम भी दृष्टिगोचर होरहा है। अशान्ति तथा विग्रह के ज्वालामुखी पर खडा आज मानव समुदाय काल के एक धक्के की प्रतीक्षा कर रहा है और यह प्रत्येक मानस मे स्पष्ट तथा प्रतिभासित होरहा है कि यदि आज वह हिंसा से पराङ्मुख न हुआ और अहिंसा के अमृत-तत्व को मन वचन एव कर्म से न अपना पाया तो उसके सर्वस्वान्त मे अधिक विलम्ब न समझना चाहिये।

विनाश के ग्रह चारों ओर से एकत्र होगये है। सृष्टि में अनेक बार ऐसी संस्थिति उत्पन्न हुई है। महाभारत युद्ध के पहले भी दुर्वृत्तियो का इसी प्रकार साम्राज्य स्थापित होगया था। उस समय महात्मा भीष्म के समान आजीवन ब्रह्मचारी, आचार्य द्रोण के समान धनुर्विद्या में पारंगत आदर्श गुरु, विदुर के समान समर्पित भगवद्-भक्त, महान् योद्धा कर्ण के समान उदार दानी प्रभृति पुरुष-पुंगव तथा वेदज्ञ धर्माचार्य विद्यमान थे, पर दुर्योधन के एक भी दुराचार एव दौरात्म्य के विरुद्ध आवाज उठाने की शक्ति इनमें से एक मे भी नही थी। भरे दरबार मे दुर्योधन ने जब द्यूत-क्रीडा मे पराजित पांडवो के सामने, द्रोपदी को नग्न करने का आदेश दुश्शासन को दिया, तब ये महान धर्मशास्त्र-वेत्ता महात्मा-गण टुकुर टुकुर देखते भर रहे। उनमे यह शक्ति नही थी कि वे द्रोपदी के वस्त्र खीचने मे संलग्न दुश्शासन को वाणी या हाथ से भी रोकने का संकेत करते। सत्य और शील का जब इस प्रकार खुले आम अपहरण होरहा था; ज्ञान तथा विवेक भागकर कन्दराओ मे छिप रहे थे; सारी विद्वत्ता एवं धर्म-शास्त्रज्ञता कायर बनकर वासना के जगमगाते गुफ़ो मे

दास बन रही थी; प्रेम, सहयोग तथा बलिदान का जब कोई मूल्य नही रह गया था, तब अन्तत: महाभारत का युगान्तरकारी युद्ध प्रारम्भ हुआ और केवल १८ दिनो मे ही विश्व का विज्ञान कौशल, सभ्यता तथा सस्कृति, वीरत्व एवं पराक्रम, पौरुष एव साहस, उपलब्धियां तथा सिद्धिया आदि सभी तत्व एव गुण विशाल मानव समुदाय के साथ शून्य में विलीन होगये।

आज विश्व की स्थिति तो महाभारत काल मे भी अधिक भयावह होचुकी है। उस समय तो १८ दिनो मे युद्ध का विकराल परिणाम देखने को मिला था। आज तो इस सारे विश्व के मिटने मे १८ मिनट भी नही लगेगे। वैज्ञानिको का कहना है कि अणुआयुधो का इतना अधिक अम्बार लग चुका है कि उनके एकत्र विस्फोट से इस दुनिया से बीस गुनी विस्तृत दुनिया कुछ क्षणो मे ही सर्वथा विध्वस्त होसकती है।

इस भीषण स्थिति की कल्पना मानव ने पहले कभी नही की होगी। पर आज जब हम यहा तक पहुंच ही गये है, तब ज्ञान, विवेक, तथा सद्बुद्धि का यही तकाजा है कि हम उस पर शान्ति-पूर्वक विचार करें। विश्व के एक एक नागरिक का आज यह प्रधान धर्म होगया है कि वह इस बात का दृढ निश्चय कर ले कि यदि वह महाप्रलय मे अपना विनाश नही कराना चाहता तो उसे स्थायी विश्व-शान्ति के लिये मन-वचन-कर्म से प्रयास करना होगा। विश्व की स्थायी शान्ति का रहस्य अहिंसा मत्र की सिद्धि मे है। इस मत्र की सिद्धि प्रत्येक जन को करनी होगी और यह स्थिति प्रेम, अपरिग्रह, अस्तेय, सहयोग, करुणा एवं बलिदान के सतत सफल आचरण द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। प्रकृत वृत्तियो को सुसंस्कृत एवं उदात्त बनाने मे ही मानव का कल्याण है। आज की जड़ एव यान्त्रिक वैज्ञानिक समृद्धि पर यदि आध्यात्मिक करुणा का अनुशासन स्थापित होजाय, तो निश्चय ही इस मर्त्यलोक की दुन्दुभि सौर-मंडल के एक एक ग्रह मे निनादित होउठे।

प्रत्यक्ष जगत के इस आलोडन-विलोडन से जब भाव जगत् आन्दोलित होउठता है, तब सहसा ही वाक्देवी के जिस स्वरूप का आविर्भाव होता है, उसीके "अश्रु-हास" साहित्य की प्रतिष्ठा करते हैं। वाक्शक्ति प्राणशक्ति से प्रेरित होकर जब प्रभविष्णु रूप मे निखर पड़ती है, तब वही विशिष्ट शैली बन जाती है जो श्रोता अथवा पाठक के मानस को

अभिभूत करने में समर्थ होती है । हमें प्रसन्नता है कि श्री निर्गुण जी ने युग-यात्रा के इसी विशद क्षेत्र के अनुभावो एवं प्रभावो को उद्भावित करने का सफल प्रयत्न इस भावकाव्य "मेरा सपना" के रूप मे किया है ।

विश्व की हिंसक प्रतिद्वन्द्विता से कवि का मानस उद्विग्न होउठा है। अपनी सवेदनशीलता से व्यथित होकर वह प्रश्न करता है :

सदा अतृप्त तृषातुर रहना
जीवन का सन्देश यही क्या ?
अपने हाथों चिता जला कर
जल जाना उद्देश्य यही क्या ?

वह चिन्तातुर एवं शोकाकुल होकर पुन. पूछता है :

यही सत्य क्या प्रगति हमारी ?
इसी भांति क्या मनुज बढेगा,
अथवा अपने ही कर से वह
नितप्रति अपनी चिता रचेगा ?

अन्धकार तथा प्रकाश मे निरन्तर युद्ध चलता रहता है । जब जब अन्धकार प्रबल होउठता है, अन्याय, अनाचार, स्वच्छंदता, उच्छृंखलता, उन्माद, विलास, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष, मद-मत्सर आदि दुर्गुणों की वृद्धि होने लगती है, तब तब "गीता" के आश्वासन के अनुसार भगवान स्वयं प्रकाश-पुज बनकर इस पृथ्वीतल पर अवतीर्ण होते है । यथा :

यदायदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।

पर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि को इस आश्वासन पर भी विश्वास नहीं रहा। इसलिये वह पुनः कह उठता है :

राम-कृष्ण की संस्कृतियो के
वीर वंशधर बोलो इस क्षण;
जीवन-धन मिल रहा शून्य में
लुप्त हुये जाते गौरव क्षण !

मौन होरहे हो क्यों इस विधि
अन्धकार क्या छा जावेगा ?
वीरो का इतिहास आज क्या
क्षण भर में ही मिट जावेगा ?

किससे पूछूँ क्या कहूँ हाय,
अब पास नहीं मेरे कोई !!
आग लग रही भीतर बाहर
मति गति धृति सब कुछ है खोई ।

पाठक देखे, कितनी विकलता है इन भावोद्गारो मे । जब कवि एक द्रष्टा की भाति कहता है :

बुझा न्याय का दीप, खड़ा है
मानव आज अकेला पथ पर;
दूर कहीं उस पार देखता
रुंड-मुंड का मेला पथ पर ।

चांद गगन में आता जाता,
किन्तु न अब वह मुस्काता है;
जलता रहता सूर्य गगन में
पर न प्रकाश जगत पाता है ।

आज के युद्ध-लिप्सु संसार का त्रासदायक चित्र आंखों के सामने नाच उठता है । कवि अत्यन्त भाव-प्रवण है । इसीलिये जब सारा जग हिसा के विविध सम्मोहक एवं

प्रतियोगी व्यापारों में बुरी तरह निमग्न होकर आत्मविस्मृति के गहन अन्धकार में प्रसुप्त होगया है, तब उसका व्यथित मन भीषण भविष्य के उल्कापात को देखकर कराह उठता है। यह कहता है :

सोया सब संसार आज है,
जाग रहा मै हाय अकेला!
अभिशापों के कोलाहल से
तड़प रहा मै खड़ा अकेला।

"मेरा सपना" मे कवि ने मानवता को जगाने का प्रयास किया है। सचेतन की भाति जब वह अपनी वाणी से उद्घोषित करता है :

अरुनारे रतनारे नयनों
में प्रकाश की धार बह रही;
ओजस्वी आनन से प्रतिपल
सिंहो की हुंकार झर रही।

भरी हुई हैं आग तुम्हारे
ऊर्जस्वित इस अन्तस्तल में;
उथल-पुथल कर चुकी प्रलय-सी
क्रान्ति हुई उस बड़वानल में।

तुममे वह भारती राजती
उद्भासित है दसों दिशाएँ;
सरस्वती, शुचि, गंगा, जमुना
गाती जिनकी अमर कथाएँ।

देखो तो उस पार चमकता
मंजुल दीप–प्रकाश तुम्हारा;
मांझी दूर नहीं है मंजिल,
पग भर ही रह गया किनारा।

दुनिया गिरती अन्धकार में
उसके लिये विकास तुम्हीं हो;
एक नही सौ किरणो वाले
उसके लिये प्रकाश तुम्हीं हो।

तब मानवता मानो उद्‌बुद्ध होजाती है और ऐसा लगता है जैसे पथ पर अकेले ही बढ़ने वाले कवि के चरणों के साथ कोटि-कोटि मानवों की पगध्वनि भी सम्मिलित होगई है। विजयिनी मानवता "मेरा सपना" मे आगे बढ़ती ही चली जाती है। आगे चलकर अनेक सुन्दर चित्रों तथा मर्मस्पर्शी झांकियां सजाता हुआ कवि अपने गन्तव्य-स्थल की भी एक झलक दिखाता है :

चलो चले उस ओर जहाँ है
जनता की जयजयकार मधुर;
हर्षोल्लास विमुग्ध जहां पर,
खिलखिल पड़ते कितने ही उर।

आज प्रेम की बजी बासुरी,
उठ दौड़ी गोपियां घरों से;
खिची जारही मूक यंत्र–सी,
उन्मादक आह्वान स्वरों से।

चलो व्यर्थ का भेद–भाव तज
लाज–लिहाज सँकोच छोड़कर;
करें अहिंसाऽमृत का हम सब
सहज पान इस क्षण छक-छक कर।

"मेरा सपना" सुन्दर भाव–ध्वनियो से भरा हुआ है। उसका सम्पूर्ण आनन्द तो उसके पारायण से ही प्राप्त किया जा सकता है। मानवता की विजय–यात्रा के मनोहर चित्र इसमें हैं।

आधुनिक युग इसमे बोलता है। युग के प्रश्नो का समाधान भी इसमे है, केवल समस्या का अकन मात्र ही नही। यही इसकी सबसे बडी विशेषता है और यही उसकी सफलता है।

हम विश्वास करते है कि कवि की प्रतिभा का उत्तरोत्तर विकास होगा और उसकी लेखनी आगे चलकर अधिक प्राजल प्रसूनो के खिलाने मे समर्थ होगी।

रामनाथ गुप्त
सम्पादक
'रामराज्य', कानपुर

गांधी–निर्वाण–दिवस
दिनाक ३०–१–६५

# मेरा सपना

"मेरा सपना" मेरी पहली रचना नहीं है, यद्यपि प्रकाशित होने वाली पहली पुस्तक है।

मेरे विचार से लेखक स्वयं अपनी कृति का सही मूल्यांकन नही कर सकता, किन्तु मेरे पास इतनी ही बात कहने को हैं, कि मेरे विचारो का सम्यक् दर्शन पाठकों को 'मेरा सपना' मे मिलेगा।

'मेरा सपना' घटना प्रधान न होकर, भाव-प्रधान है। बात ऐसी ही है कि मुझे ऐसा लगा कि मिथिलापुरी के रगमच पर, सीता स्वयवर के दिन जो सम्मेलन हुआ था, वह वास्तव मे एक बहुत बडे उद्देश्य से पूर्ण था; और जो कुछ उन्होने कहा उसमे आज का युग बोल रहा था। इसलिये मै उस सम्मेलन के महत्वपूर्ण नामो का लोभ छोड़ न पाया। उनके उद्देश्यो से उत्पन्न प्रश्नो के समाधान मे, जिस पथ का निर्माण हुआ, उस पथ पर चल कर लोक-संस्कृति को हिंसा-भय, दीनता एवं दुर्दैन्य से बचाया जा सकता हैं--ऐसा मेरा विश्वास हे।

—निर्गुण अवस्थी

जय होवे अभिनव मानव की,
परम शान्ति-साधक सम्बल की,
जय जीवन-आदर्श व्योम की
आत्मोभव सत्याग्रह बल की ।

आज कुटिलतम मानस से भी,
सुरसरि-धार निकल सकती है;
किसी "राम" के चरण स्पर्श से
शिला अहिल्या बन सकती है ।

# मेरा सपना

( प्रथम अङ्क )

## संकेत

संसृति के निर्माण-काल में, प्रकृति अपने गुणों से, कुछ ऐसे बीज छोड़ देती है, जिनके पेड़, पत्ते, फूल, फल शाश्वत काल तक बने रहते है। अर्थात् सृष्टि की चिंतन और अचिंतन अवस्था का प्रकाश-पुज, धरा को अहर्निश प्रभावित करता रहता है। इसके साक्षी है—कृष्ण की गीता और राम का मानस। परन्तु जब इस प्रकाश-पुज को नष्ट करने का प्रयास किया जाता है, तो संसृति असुरक्षित होजाती है और जन-मानस भय और अभावों से ग्रसित होकर, अपने आपमे ही त्रस्त होने लगता है। किन्तु प्रकृति की बांसुरी बजती ही रहती है, कोई सुने अथवा न सुने।

विश्व—दग्ध अभिशाप-ताप में
चंचल-दल-सा कांप रहा था,
जीवन की मधु-भरित दिशा मे
तृषा-विकल-सा, हांफ रहा था।

हाय, कल्पना के पलनों में
मानव यह निशिदिन है सोता !
जग में उन्मादक जीवन भी
कितना सुखमय प्रति दिन होता !

फिर अभाव-असफलताओं से
दिन दिन यह संघर्षण होता;
कल्पद्रुम-सुख की छाया मे
कैसे फिर जन-तर्पण होता।

सदा अतृप्त तृषातुर रहना,
जीवन का सदेश यही क्या ?
अपने हाथो चिता जलाकर
जल जाना उद्देश्य यही क्या ?

यही सत्य क्या प्रगति हमारी
इसी भाति क्या मनुज बढ़ेगा ?
अथवा अपने ही कर से वह
नित प्रति अपनी चिता रचेगा?

युग-युग से वह चीख रहा है
अपने अतर की आहो से;
विद्रोही बन प्राण तड़पते,
अन्तर्ज्वाला के दाहों से।

फिर भी उसने सघर्षण-रत
गति अपने मन मे ठानी है,
धूप-धुन्ध की है यह छाया,
पर न हार उसने मानी है।

शब्द--रूप--रस-गन्ध-भरित वह
लहरों से टकराता जाता;
औ' अनन्त अभिलाषाओ के
सपने सब बिखराता जाता।

सुखी उन्हे वह क्या समझेगा
प्यासे जीवन की धारा मे;
क्षुधा-पिपासा नित्य सुलगती,
जड़ता की कलुषित कारा मे।

विश्व विकास इसे कहता है,
पर यह उसकी दुर्बलताएँ;
असन्तोष–तृष्णा–रेखाएँ,
उसकी ही तो है ज्वालाएँ।

कब से वह पीता आता है
तीव्र हलाहल-सी यह हाला;
पुलकित हो हो कर, निज कर से,
भरता जाता मधु का प्याला।

फिर भी वह प्यासा का प्यासा
नित्य तृषातुर ही रहता है;
पाकर दिव्य प्रसाद हाय, वह
'तुष्टि नहीं है', यह कहता है।

पोषित करता रहता मानव
मन में सुख की अभिलाषा को,
किन्तु न रचमात्र छू पाता,
वह उसकी ही परिभाषा को।

इस सूने नभ से जाने क्यो
कितने ही वरदान निकलते;
और कल्पना के पखो पर
बनकर वे अरमान मचलते।

जीवन की माधुरी आह, यह
मथर गति से नाच रही है;
युग-युग की प्यासी, सतापित,
मानव मन को जाँच रही है।

मुझे कचोट रहा है प्रतिपल
बाहर भीतर का द्वन्द्व-घात,
इस जन्म-मृत्यु की पगडडी पर
होते है कितने पदाघात।

कितने अरमान स्वप्न बनकर
धू धू करते जल जाते है,
निष्फलता के आकुल मन मे
प्यासे बादल मडराते है।

फिर भी तो उसको इस गति मे
मिलता यहां विराम कहा है ?
हार जीत है, जीत हार है,
यही द्वन्द्व अविराम यहां है।

यही विषमता इस जीवन की
दिन दूनी बढ़ती जाती है;
मानव को मानव कहने मे,
लज्जित होती, शरमाती है।

मानवता के उच्च शिखर पर
बैठा मानव चीख रहा है;
दुर्बल जिनको समझे बैठा
उन पर हँसता दीख रहा है।

तुम जिनको कहते हो दुर्बल
दीन हीन लाचार विवश अति;
वे ही तो है सत्य सृष्टि के
रसदाता, घनश्याम सदृश यति।

कही जन्म है, कही मृत्यु है,
कही क्लान्ति है, भ्रान्ति कही है,
ध्वस कही, निर्माण कही है,
कही क्रान्ति है, शान्ति कही है।

जिसके बल पर बलवान बने,
उस पर अधिकार चले करने,
जिसकी गति से गतिवान बने,
उसका सहार चले करने !

यह द्वन्द्व-युद्ध चल रहा, उधर
निर्बल का बल हुंकार उठा !
इन प्राणो मे उत्साह अमित
बलवानों को ललकार उठा !

द्वितीय अङ्क



## सकेत

मानव जाति को सत्य, न्याय और अहिंसा का सदेश देने वाला वाहक, जब विश्व की विषम परिस्थितियो से टकराता है, तब उसके कठिन प्रहारों से उसका हृदय विचलित होउठता है। प्रकृति भी उसे मौन और कामी दिखाई देती है। जीवन के सारे उपकरण, जो किसी समय तक, उसकी स्फूर्ति और प्रेरणा के स्रोत रहे है, सबके सब नृशंस, निष्ठुर प्रतीत होने लगते है और वह कह उठता है :

राम-कृष्ण की सस्कृतियो के
वीर वंशधर बोलो इस क्षण;
जीवन-धन मिल रहा शून्य में
लुप्त हुये जाते गौरव कण।



दूर क्षितिज से सघन अधेरा,
क्यो इस ओर चला आता है,
जीवन दीप बुझा जाता क्यो ?
निर्मम धूम्र घिरा आता है।

अरे श्वास, मेरे जीवन के
स्वय जल रहे, जला रहे हो !
भ्रमित बुद्धि कर रहे निरन्तर,
स्वयं मिट रहे, मिटा रहे हो।

बुझे जा रहे दीप गगन के,
स्वर टूटे है, टूटी गति है;
मुक्त देश के वासी नर पर
व्यग कर रही आज नियति है।

तो क्या "आज" नही वह होगा
जिस पर कल विश्वास हुआ था ?
आज नही तो क्या कल होगा ?
लगता यह परिहास हुआ था !

रंग–बिरगी ध्वजा पताका
कुछ सहमी, कुम्हलाई–सी है;
पूछो उनसे, हुआ उन्हे क्या ?
फल पाकर बौराई–सी हैं।

जाना पहली बार आज यह
देश उसासों को भरता है;
क्रिया शून्य बल–हीन, शक्ति के
अंचल पर आँसू तिरता है।

वह मानव, जिसके गीतो से
जग में हाहाकार मचा था;
नभ मारुत क्षिति वारि अनल मे
कम्पित हो चीत्कार मचा था।

उन आजानु बाहुओ में क्या,
बल का अब अभिमान नही है ?
वीर-विहीन हुई क्या धरती ?
मानव मे अब प्राण नही है ?

सोचा था, इस पुण्य देश के
भरत समान वीर है सारे;
हँस कर शीश काट ले कर मे,
मातृभूमि के रक्षक प्यारे।

राम कृष्ण की सस्कृतियो के
वीर वशधर बोलो इस क्षण !
जीवन धन मिल रहा शून्य मे
लुप्त हुये जाते गौरव कण ! !

मौन होरहे हो क्यों इस विधि ?
अधकार क्या छा जायेगा ?
वीरो का इतिहास आज क्या
क्षण भर मे ही मिटा जायेगा ?

किससे पूछू, क्या उत्तर है,
पास नही मेरे है कोई !
आग लग रही भीतर–बाहर
मति-गति-धृति सब कुछ है खोई।

चीख रही है धरा गगन मे,
हाहाकार मचा है भीषण;
स्वार्थ, हिंस्र प्रतिशोध कलह का
ज्वालामुखी फटा है भीषण !

आज झुंड के झुंड यहा पर
जर्जर पड़े हुये हैं साथी !
और सभ्यता के पुतलो के
पजर पडे हुये है साथी !

बुझा न्याय का दीप पड़ा है,
मानव आज अकेला पथ पर;
दूर कही, उस पार देखता
रुंड मुड का मेला पथ पर।

डूब रहा है चांद क्षितिज मे
सोई है ये दशो दिशाये।
आज गगन के नीले पट मे
खिची हुई काली रेखाये।

सारी दुनिया डूब चुकी है,
डूबा है नरत्व मानव का;
नारी के चरित्र से चित्रित
कलुषित है तन मन दानव का।

इसी घोर तम का हो राही
अन्ध चला जाता है देखो;
मानव का इतिहास, देश का
भाग्य छला जाता है देखो।

ज सूर्य के तप्त नयन भी
फूट रहे मानो बस पल मे;
लाल लाल अंगारो से वे
छा जायेगे इस भूतल मे।

सोया सब संसार आज है,
जाग रहा मै हाय, अकेला।
अभिशापो के कोलाहल से
तड़प रहा जीवन का मेला।

बैठी राज–सभा है सम्मुख,
नाम मिट रहा, पर वीरों का!
शीतल हिम–खंडों में पौरुष
जमा जा रहा रणधीरों का!

सुनो दूर यह ध्वनि जीवन की
युग मानव के पुरुष दुलारे;
तुमसे ही तो लगा रहा अब
युग निज आजादी के नारे।

उठा बवंडर, आधी आई,
तुम निज गति से बढ़े जा रहे,
जीवन के इस महायज्ञ के
बलिदानी रथ चढ़े जा रहे।

युग-वाणी को सुन न सकोगे
सत्य अहिसा के पालक तुम;
किस प्रकाश को दे जाओगे
धर्म-नीति के संचालक तुम।

सोचो तो कुछ अपने मन मे
मानव का वरदान यही क्या ?
तृषित, क्षुधित, पीड़ित प्राणो को
जीवन देना शान यही क्या ?

आज पत्थरो के टुकड़े भी
नाम तुम्हारा ही गाते है;
विजय नाद की लिये तूलिका
सुयश तुम्हारा लिख जाते है।

जप, तप, ज्ञान और प्रभुता की
कमी नही कुछ भी बाकी है;
इस युग का इतिहास तुम्हारे
सब कर्मो का खुद साक्षी है।

अरुनारे रतनारे नयनो
में प्रकाश की धार बह रही,
ओजस्वी आनन से प्रतिपल
सिहो की हुंकार झर रही।

भरी हुई है आग तुम्हारे
ऊर्जस्वित इस अन्तस्तल मे,
उथल पुथल कर चुकी प्रलय-सी
क्रान्ति हुई उस बड़वानल मे।

झुलस झुलस कर, टूट पड़े सब
भू पर नभ के तारे सारे।
संसृति लगी देखने नभ को
बरस पड़े सहसा अंगारे।

लगी कांपने धरा, हो उठा
तूर्यनाद प्राणो से प्यारा।
कोटि कोटि कठो के स्वर से
फूटी जीवन रस की धारा।

तुममे वह भारती राजती;
उद्भासित है दशों दिशायें;
सरस्वती शुचि गंगा जमुना
गाती जिसकी अमर कथायें।

देखो तो उस पार चमकता
मजुल दीप–प्रकाश तुम्हारा;
माझी दूर नहीं है मजिल,
पग भर ही रह गया किनारा।

तुम अपने ही रक्त–विन्दु से
जग का नव शृंगार कर रहे।
मानवता के कल्याण हेतु
आत्मोत्सर्ग महान कर रहे।

तुम निज प्राणों के प्रकाश मे
युग के दीप जलाते प्रतिक्षण।
दिशि-दिशि भव-भय-भ्रमित नाव में
तुम पतवार लगाते प्रतिक्षण।

देख तुम्हारी मूर्ति दिव्य, यह
दानवता भी घबरा जाती;
मरण स्वय ही जीवन बनता
मृत्यु दूर से खड़ी लजाती।

सोचो भी, तो भूल गये क्या
भारत ही नाम तुम्हारा है,
डगमग-सी जग की नैया का,
भारत ही एक सहारा है।

यदि भूल गये आदर्श आज
तो जीत कभी ना पाओगे;
यदि भूल गये विश्वास आज
तो जीवन भर पछताओगे।

दुनिया गिरती है अधकार मे,
उसके लिये विकास तुम्हीं हो;
एक नही, सौ किरणो वाले
उसके लिये प्रकाश तुम्हीं हो।

आज तुम्हारे द्वार खड़ा,
ससार, भीख कुछ मांग रहा है ।
तृषित, क्षुधित प्राणों के स्वर से
तुमको आज पुकार रहा है ।

किन्तु व्यर्थ है, तड़प रहे है,
आज यहां पर सब नर-नारी;
त्राहि-त्राहि कर उठे प्राण है;
छाई है विपदा अति भारी ।

उगल रहा है गरल पिण्ड—
लोहू का स्रोत फटा जाता है;
आज मनुज के लिये मनुज का—
देखो नाम मिटा जाता है ।

आज स्वर्ग के सभी देवता
आनन्दित अति होते जाते,
मृत्यु-लोक-वासी इस नर की
यश गाथायें गाते जाते।

देखो कहीं घोर कोलाहल
मानव बेकस चीख रहा है,
विवश देश की मृदु छाती पर
कालकूट वह उगल रहा है।

अरे आज तूफान जल रहे,
क्षितिज और आकाश जल रहे;
आज नही युग-युग से सोये
मानव से अरमान जल रहे।

कम्पित होता गीत धरा का,
और स्वर्ग म्रियमाण होरहा।
सिर धुन धुन करुणा रोती है,
चिर शाश्वत कल्याण खोरहा ?

ढहती जाती है मीनारें,
धरती मृत दिखलाई देती,
दीवाले हहराती गिरती,
खंडित सास सुनाई देती।

अवनी के मरघट पर कितने
रोज जलाये जन जाते है;
और झुड के झुड यहां पर
लाखो दफ्नाये जाते हैं।

निकल रहा है धुआ, सुलगते
प्राण, सिसकते नर जाते हैं;
आज मनुज की चिता जल रही
श्वान चतुर्दिक मडराते है।

आज यहां जमघट प्राणो का,
महादान प्रक्रिया होरही,
एक प्राण के लिये करोड़ों
प्राणों की आहुती होरही।

किन्तु जगत चलता जाता है,
धारा द्रुत बहती जाती है;
किस विश्वास भरी आशा में
जीवन लाश् बही जाती है।

चारों ओर एक सूनापन,
शोणित मे पडा तडपता है,
मानवता की लाश अधजली
बज्र हृदय लख कर फटता है !

हाय यहा, विश्वास जल उठा,
भारत का आदर्श जल उठा;
लाल लाल अगारों के मिस
प्रिय स्वदेश का प्यार जल उठा।

फिर भी नहीं जग रहे भाई,
क्षण भर मे ही दुनिया मिटती;
आह, देख लो सम्मुख ही तो,
मातृभूमि की छाती फटती।

उठो उठो, हां भागो भागो,
अम्बर भी फटने वाला है;
इस महाअग्नि में पच तत्व का
जीवन भी जलने वाला है।

जलता हुआ अग्नि का भी शव
सहसा अब गिरने वाला है;
महानाश के लिये जगत का
डंका अब बजने वाला है।

धरा बन गई केवल खडहर,
बलवीरो के नाम छिपाये;
आज शक्ति ने धन के मद में
पौरुष के इतिहास छिपाये।

गगा-यमुना रो रही व्यथित,
उर का पानी उडता जाता,
और विषमता की माया से
रक्त राख ही बनता जाता।

चांद गगन मे आता जाता,
किन्तु न अब वह मुस्काता है;
जलता रहता सूर्य गगन में,
पर न प्रकाश जगत पाता है।

आज सिंह भी, श्वान बन गये,
अंधियारी फिरती खोई-सी,
किसको कहें, पुकारे किसको ?
दुनियां पड़ी आज सोई-सी !





देखो सहसा शोर हुआ है,
नर-नारी चीत्कार कर रहे;
नाव भवर मे डूब रही सब,
भय से हाहाकार कर रहे।

तृण-सी सब जल रही मनुजता
वर्षो के अरमान जल रहे,
मदिर मस्जिद के दर्शन मे
भक्तों के वरदान जल रहे।

खोये जितने स्वप्न संजोये,
कैसी यह आजादी आई,
अरे हिमालय, तुम्ही बताओ
कैसी यह बरबादी छाई।

जान गया हू सचमुच मै अब
छिपा हुआ शशि काले घन मे,
शान्ति गारही मृत्यु-गीत अब
आग लग चुकी है जीवन मे।

युग-युग के बलिदानी जागो,
वीरता तुम्हें ललकार रही,
भारत के अमर आर्यपुत्रो !
मिथिला तुमको धिक्कार रही।

भारत की यह गौरव गाथा
सहसा आज मलीन हुई है;
जला दीप छू गया व्योम से
वसुधा वीर–विहीन हुई है।

तीसरा अङ्क

## संकेत

संसार मे जब जब भय, उत्पीड़न का बाहुल्य होता है, तब तब जनसाधारण अपने को निराश और अनाथ-सा अनुभव करने लगता हैं। राजा जनक अपने को कुछ इसी प्रकार अनुभव करने लगे। किन्तु लक्ष्मण के प्रादुर्भाव ने सहारा देकर उन्हे विषम स्थिति से बचा लिया।

नियमों के निर्मम प्रहार से
मानव का मन फिर जाता है।
नभ में और धरा में निशिदिन
अंधकार ही घिर आता है।

शान्त होगई सभा, सुना जब,
महाक्रान्ति का जीवित नारा,
सिंहासन भी लगा डोलने,
एक वीर ने जब ललकारा।

देखा और सुना सब ही ने
लक्ष्मण का रूप भयंकर था।
थी लाल लाल आंखे उनकी
मानो सम्मुख प्रलयंकर था।

'यह वसुधा वीर-विहीन हुई'—
यह कौन भला कह सकता है ?
वीरो के रहते हुए यहां
कोई कैसे सह सकता है।

हे योगिराज, यह वीर भूमि,
हम बल वाले कहलाते है;
प्राणो को लिये हथेली पर,
इस मातृभूमि मे आते है।

मानव के रहते वीरो का
यदि नाम भुलाया जावेगा,
तो निश्चित समझो मिथिलापति,
बस, महानाश होजावेगा।

भूमंडल और खमडल में
हाहाकार मचेगा भीषण।
कौन सहेगा तेज अपरिमित,
सूरज चांद फटेगा जिस क्षण।

उबलेगा गगा का पानी
घर घर मे बस खून बहेगा।
लाल लाल होंगी दीवारे,
युग जीवन का दीप बुझेगा।

लज्जित होंगी सभी दिशाएँ,
जग का जब चीर हरण होगा;
और प्रसूता माताओ के
पुत्रो का प्राण हरण होगा।

विदिया सुहाग की फूटेगी
करुणा के भी अश्रु जलेंगे;
अरमानो के कोमल अंकुर
भीषण आतप में झुलसेंगे।

मानवता तुम्हे पुकारेगी,
अभिमान तुम्हें ललकारेगे;
फटती वसुधा की छाती से
इन्सान तुम्हे धिक्कारेगे।

क्षण भर मे सब खोजाएँगे
अगणित अपार जीवन वाले,
फिर विजय-क्रान्ति की ज्वाला मे
जल जायेगे आशा वाले।

आदर्श मिटेगा जीवन से,
विश्वास उठेगा मानव से,
देवो से देवत्व उठेगा,
मनुजत्व मिटेगा मानव से।

सयम और नियम टूटेगे,
धुंधली होगी क्रान्ति दिशाएँ,
आज देश के भाग्य-पटल की
मिट जायेगी सब रेखाएँ।

बोलो बोलो हे मौन मूर्ति,
क्या भ्रान्ति व्यथा से व्याकुल हो?
देखो आशा-दीप जला, क्यो
अंधयारे से आकुल हो!

नियमो के निर्मम प्रहार से
मानव का मन फिर जाता है,
नभ मे और धरा मे निशिदिन
अधकार ही घिर आता है।

जीवन और मरण की प्रभुता
दोनों की है एक कहानी,
क्रोध, मोह, प्रतिशोध, लोभ की
निशिदिन जलती रही निशानी।

हममें लख अंकुरित वृत्तियां
घबराती है दुनिया सारी;
हममे वह प्रेम-राग, जिससे
अपनाती है दुनिया सारी।

हम ही मानव, हम ही दानव,
हम शोणित तर्पण करते है।
किन्तु हमी मे ऐसे नर जो
मानव के हित ही मरते है।

प्यासा ही रहना जीवन मे
यह शुभ सन्देश हमारा है।
मर मर कर जीना जीवन मे,
यह सत् उद्देश्य हमारा है।

हम मरते उनके लिये, जो कि
मरने को जीवन कहते है,
हम जीते उनके लिये, जो कि
जीवन को मरना कहते है।

हम करते है संघर्ष भ्रान्ति से,
तम से द्रोह हमारा है,
क्योंकि अमरता मे भी जलता
रहता आदर्श हमारा है।

अंधकार फैलाते हम ही
हम ही प्रकाश को लाते है,
हम तो ऐसे मनुज, प्रलय से
कभी न क्षण भर घबराते है।

हम ही है वह क्रान्ति कि जिसमे
शान्ति बसी सन्तत रहती है,
हम ही है वह चिता कि जिसमे
जिन्दगी बोलती रहती है।

हम ही है वह खडहर, जिसमे
प्रासाद उठाये जाते हैं;
हम ही है वह मदिर, जिसमें
घृत दीप जलाये जाते हैं।

हम ही हैं वह प्रलय जहा पर
सिन्धु उमड़ कर आता है;
हम ही है वह विलय, जहां पर
दनुज देव बन जाता है।

हम ही तो इस अधकार में
आगे नित बढ़ते जाते है;
तारों के शुभ दीप जलाकर
स्वर्ग धरा पर ले आते हैं।

आज नया जो यहां दीखता,
जीर्ण पुरातन कल वह होगा;
कल तक हुआ पुराना जो था,
वह नवीन शोभन अब होगा।

और यहा सब कुछ मिटते है,
मृत्यु एक सी नित रहती है,
मनुज लोक की वही स्वामिनी
इससे ही ससृति बनती है।

दुखद कल्पना नही यहा पर,
वह शीतलता की है छाया,
उठो, जनक, मगल प्रभात है,
ऊषा का अचल लहराया।

विश्वास करो अपने बल पर,
विश्वासी की है आज प्रतीक्षा;
जनक, जानकी नही यहां पर,
मानव की है अग्नि-परीक्षा।

चौथा अङ्क



## संकेत

आज मानव जिस स्थिति मे पहुंच रहा है, वह अपनी सम्पूर्ण भीषणता के साथ स्पष्ट होचुका है। वह आज अपने आपमें ही सर्व-शक्तिमान बनकर गौरव प्राप्त करने की चेष्टा में निरत है। नाना प्रकार के वैज्ञानिक अनुसंधान, जो आज मानवता को चुनौती देने मे लगे है, नित्य नवीन रूप धारण कर हमारे सामने प्रकट होरहे है और अपनी अजेयता एवं सर्व संहारक क्षमता से विश्व को आतङ्कित कर रहे है! काश इस विज्ञान का सामञ्जस्य मानव-हृदय से होपाता। करुणा, प्रेम तथा सत्य को जीवन का मूलाधार मानकर जब विज्ञान अपना उत्कर्ष सिद्ध करेगा, तभी मानवता कल्याण-पथ पर प्रशस्त होसकेगी। वस्तुतः यही आध्यात्म्य म.र्ग है।



इस जीवन [illegible]

युग मे [illegible]

क्या [illegible]

ज [illegible]

उड गया हिमालय अम्बर से
धरती पर यह अम्बार फटा;
हर हर बम बम,हर हर बम बम,
क्या शकर का कैलास फटा ?

बिजली चमकी, तारे टूटे,
क्या महासिन्धु ही उमड़ पडा ?
सूर्य चन्द्र भागे क्यो जाते ?
देवो पर दानव टूट पड़ा ।

किसके चरणो का प्रहार यह ?
धरा अभी तक डोल रही है;
रुकी हुई है सास पवन की
सॉय सॉय सी बोल रही है ।

क्या स्वर्ग नरक मे सधि हुई ?
नभ की कटुता दूर हुई है ?
अथवा दैत्यो से लडने की
शक्ति अनोखी प्रकट हुई है ।

अथवा जीवन का क्रम बदला,
शस्त्रो की गति भी बदली है ।
किस शासक अत्याचारी पर
शस्त्रो की वाणी मचली है ?

नही नही, भृगुपति, यह भ्रम है,
जग का यह सताप नहीं है;
नही आग की ज्वाला है,
सत्ताधारी का दाप नही है ।

नहीं शक्ति की लाचारी है,
नही व्यथा का कोलाहल है,
नही घृणा-विद्वेष-कलह की
जवाला फटी, नही हलचल है ।

आज यहा नेत्रो का सुख है,
त्याग, तपस्या, आराधन है,
शान्ति-मूर्ति मानव की प्रतिमा
प्रकट हुई है, जीवन-धन है ।

आज यहां के नगर-निवासी
जीवन-सुख लेने आये हैं;
जीवन-घट जो रिक्त होगया,
अमृत सलिल भरने आये है ।

प्रकट हुये सुख-दुख के प्रतिनिधि,
सब कुछ ये बलिदान करेगे,
मुक्त रहेगे, निर्भय होकर
स्वतत्रता का पान करेगे।

आज सत्य तो प्रकट होगया,
वीरो के अभिमान आगये;
जो युग-युग से विलख रही थी
मानवता के राम आगये।

"राम आगये" ? कौन राम ?
मै परशुराम, यह राम कौन है ?
प्रतिद्वन्द्वी बन कर आया जो
आज यहा वह राम कौन है ?

राम कौन है, राम कौन है ?
बोलो बोलो राजाओ तुम !
मुझे बताओ : राम कौन है
बोलो, दशो दिशाओ तुम !!

राम नही कोई जग मे, मैं
परशुराम ही राम तुम्हारा;
मेरे फरशे की ओर लखो,
जो तुम सबकी जीवन-धारा ।

"राम यहा है, राम वहा है"
प्रतिध्वनि
राम तुम्हारे घर आया है,
देखो, राम, राम को देखो
राम, तुम्हारे मनभाया है ।

नहीं नही, तुम झूठे हो,
है राम नही कोई इस जग मे,
तुम भ्रमित होगये हो सतो,
कैसा कुतर्क फैला जग मे।

तुम भूल रहे हो परशुराम,
ध्वनि वह राम शान्ति का दाता है;
वह सत्य अहिसा का हामी
जन जन का प्रिय सुख-दाता है।

वह राम मनुज है, मानव है,
दुखियों की अमृतधारा है,
सबके सुख मे ही उसका सुख,
सबके मन को वह प्यारा है!

बस ज्ञात होगया मुझे अभी,
अब फिर से आग लगानी है;
उन प्रलय स्वप्न के चित्रो की
अब फिर से ज्वाल जलानी है।

जिन स्वप्नो से ही तो मेरा
अब तक का इतिहास बना है;
जिनकी लपटों मे मुस्काना
मेरा शुचि अधिकार बना है।

कठिन हो चला है जीवन अब
कठिन दया की अब बाते है;
विश्वास और आदर्श शब्द
केवल धोखे की घाते है।

विश्वास स्वय ही धोखा है,
चेतनता सो-सी जाती है,
कल्पित मोहक आशाओ मे
जागृति खोती-सी जाती है।

किन्तु नही यह सब होने का,
अब तो विनाश की बारी है;
वर्तमान की समर चडिका
ने तलवार संभारी है।

अब तो मलिन होगई ऊषा,
लाल पिंड अब तो निकलेगा;
हाहाकार मचेगा जग मे,
यह सिंहासन, जब डोलेगा।

अब तो आग लगेगी, जिससे
सूझेगा आकाश नही कुछ,
बाहर भीतर ठौर ठौर पर
अपना होगा ज्ञात नहीं कुछ।

दिक् दिक् कोलाहल-सा होगा
भग्न हृदय फिर डोल उठेगा;
कभी गर्भ-सुस्थित लालों का
उर विदीर्ण हो चीख उठेगा।

कभी आह-सी करती ममता
खोजेगी सिन्दूर भाल का;
कभी हृदय भी जल जायेंगे,
फैलेगा तम इन्द्रजाल का।

दिशि-दिशि त्राहि-त्राहि की ध्वनि पर
जीने का अधिकार छिनेगा;
भभक भभक जलजल धरती पर
भीषणतम सहार खिलेगा।

चीखेगा ससार आह से
एक एक मिटते जायेगे,
दुनिया अब तो मिटी जारही—
सभी लोग कहते जायेगे।

आज सभ्यता के मानव का
रूप वास्तविक दर्शित होगा;
कोटि कोटि कठो से निस्सृत
पीड़ा का विक्षत स्वर होगा।

छिन्न-भिन्न होगी यह वसुधा,
मिट जायेगे शोभाशाली,
जिनकी रक्षा में रत रहकर
अस्त्र-शस्त्र करते रखवाली।

जिनकी ध्वजा पताका नभ में
फहर फहर कर फहराती है;
भूमिसात वे ही होते है,
प्रलय घटायें हहराती है।

पड़ जायेंगे उनको लाले
जीने का अधिकार नहीं अब;
भागो भागो धरा जल रही
रहने का ससार नही अब।

टूक टूक कर टूट रहे है,
नभ में रवि का चक्र टूटता,
आज विवश असहाय विकल-सा,
मानव का सौभाग्य फूटता।

अब तो लाल किरण शोलो से
सारा यह अम्बार भर रहा;
कालकूट पीकर शंकर का
भैरव अब तो नृत्य कर रहा।

जगी हृदय की यह अभिलाषा–
वन पर्वत है साथी मेरे;
मरघट की आवास-भूमि है
यम, जम्बुक हैं साथी मेरे।

कभी आह मे व्याप्त हृदय की
करुण पुकार सुनाई देगी,
कभी अधमरे मौन मनस्वी
की तस्वीर दिखाई देगी।

कभी गगन मे अधकार के
बादल दल घिरते जायेगे;
कभी पत्थरो के गिरने से
प्राण छूटते ही जायेगे।

कभी प्रलय के गीत सुनाते—
आयेगे यह घन घहराते;
धूलि उडेगी, धरणि फटेगी,
रोयेगे, कोई चिल्लाते।

सभी ओर बेकली मचेगी
अधकार जब छा जायेगा;
गर्जन करता तुमुल रोर मे
लाल सितारा उग आयेगा।

फूटेगे अंगार चतुर्दिक,
नभ मे लाल-लाल-से तारे;
मानो उड़ा रहा है कोई
धरती से लोहित गुब्बारे।

भरी प्राण मे आग भयानक,
सुलग रही अभिनव चिनगारी,
घर-घर मे है आग लग चुकी,
जलने की आई अब बारी।

माग रही है भीख आग यह,
भरी जवानी उसको दे दो;
अरमानो की कुरबानी दो,
मन की भरी उमगे दे दो !

सब जल जाये, सब मिट जाये,
यह अतिम मेरा सपना है,
महाअग्नि मे मिला सभी कुछ,
रहा न कोई अब अपना है ।

यह मेरा है उन्माद नही,
यह युग का वेश कराल यहाँ,
पा सके मनुज, जिसको छू कर,
नवयुग मे मधुर प्रवेश यहा ।

पांचवॉ अङ्क



## संकेत

विज्ञान के सहारे जिन जड-जंगम साधनो का विकास होता है, सचमुच उनमे सस्कृतियो की सस्थिति उत्पन्न नही होपाती । क्योकि भौतिक विज्ञान आत्मानद के प्रकाश को महत्व नही दे पाता । ऐसी स्थिति मे हिंसा प्रबलता धारण कर लेती है । किन्तु अहिसा के अमृत को जब वह प्राप्त कर लेती है, तो नवीन संस्कृति के निर्माण का उद्घोष होने लगता है ।



आर्य, तुम्हारे युगल नयन से
कैसा यह करुण अश्रु-वर्षण ?
किसके हेतु कराह उठा है
देव, तुम्हारा अन्तर इस क्षण।

मै दास तुम्हारा ल:मण हू,
सकट का नाम मिटा दूगा;
जो पथ की बाधा बन आये,
उनकी मै शान उड़ा दूगा।

केवल आदेश आपका हो,
प-थर सा आप गिरेगा यह !
परिजन के हित,जन-जन के हित,
अपने भी प्राण तजेगा यह !!

हो अति अधीर मन खिन्न किये
कह उठे राम : 'लक्ष्मण क्या है?
यह चिल्लाहट, यह बेचैनी,
मानव को आज हुआ क्या है ?'

कैसी कुत्सित वीभत्स घडी,
भाई का भाई प्राण हरे !
अथवा विजयी कहलाने को
मानव शोणित से स्नान करे ! !

क्या उसका यह पौरुष केवल—
लड लड़ कर ही मिट जाना है!
बोलो जग के ओ कर्णधार,
तुमने निज को पहचाना है ?

लेकिन वह उसका भ्रम ही है,
वह मार नही सकता कुछ भी,
क्षण भर को यह गिर जाय, मगर
मिट यहाँ नही सकता कुछ भी ।

कहने को विजयी हो सकता,
पर उसका है अधिकार कहा ?
जो लूट चुका सिन्दूर भाल के,
उसका है शृंगार कहां ?

जो स्वयं शक्ति का प्रश्न बना,
वह बलशाली बन जाएगा !
जो अपने मन से हार चुका,
वह जीत कभी क्या पाएगा ?

यह भ्रम का है परिताप यहां,
रह रह क्या होता जाता है ?
देखो देखो उस ओर लखन,
जग बहरा होता जाता है।

सब भाग रहे हैं अरे यहां,
यह कैसी छलना आई है !
किसका है यह रुद्र वेश
यह किसकी महिमा आई है।

मै परशुराम हूं और हमारा
परसा, अपना बाना है,
कर जगती को मानव-विहीन
अंतिम संहार मचाना है।

सावधान द्विजराज, आज यह
परिवर्तित जगती सारी है;
भूपतियों की जगह नही यह,
बच्चा-बच्चा अधिकारी है।

तुम छीन दूसरों के हक को,
बलवान पुकारे जाते हो;
तुम मानव के भक्षक बनकर
मानव-रक्षक कहलाते हो।

यह व्यर्थ तुम्हारा बाना है,
झूठे ये स्वप्न तुम्हारे है;
झूठी आकांक्षा है तुममे,
झूठे ये ज्ञान तुम्हारे हैं।

तुम स्वयं जी रहे अपने हित,
जग के हित तुममे प्यार नही;
यह घृणा-द्वेष की अग्नि जली,
जल रहे स्वय, अगार नही।

तुम अपनी ज्वाला से जग में
क्यो आग लगाने आये हो ?
इस हरी-भरी-सी वसुधा में
संहार मचाने आये हो ?

तुम जल जाओगे स्वयं यहाँ,
मरने वाले जी जायेगे।
तुम समझे जिन्हें पराजित हो,
तुम जीत न उनको पाओगे।

तुम आत्मवंचना के गायक
परिहास कर रहे हो जग से;
इस युग-सकट मे मानव के
अभिशाप ले रहे हो अग्र से।

यह चित्रकार की कला नही,
जिसकी तुम मूर्ति बनाओगे;
यह कवि का अपना आत्मजगत,
जन-मन को कुचल न पाओगे।

तुम परशु-प्रहारी प्राणी हो,
मिथ्या अभिमान तुम्हारा है;
जन-मन के जीवित स्वप्नों में
सदेश प्रेम का न्यारा है।

इन अस्त्रो-शस्त्रों की दुनिया मे
मानव-उर तो रोता है;
भ्रात-हनन करके भी देखो,
मानव यह फिर भी जीता है।

फिर तुम्ही बताओ तो सचमुच *
इक्कीस बार क्यो मारे थे;
क्या एक मनुज से, मानवता से
बार-बार तुम हारे थे ?

इस पर भी तो तुम कहते हो
मै विश्व-विदित जन-द्रोही हू;
क्षत्रिय-कुल-द्रोही भृगुवंशी
मानवता का विद्रोही हूं।

---

* रामचरित मानस में इङ्गित यह अति प्रसिद्ध कथा है कि परशुराम ने २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियों से विहीन किया था--

बाल ब्रह्मचारी अति कोही,
विश्व विदित क्षत्रिय कुल द्रोही;
भुज बल भूमि भूप बिन कीन्ही,
विपुल बार महि देवन्ह दीन्ही।

है शक्ति तुम्हारे वाणो में,
तुम जग में प्रलय मचा सकते,
पर मानव के आगे आकर
तुम दृग भी नही उठा सकते ।

तुम प्यार नही दे सकते हो
भूखी पीड़ित मानवता को !
जो हिल मिल कर रह सके यहां,
दे जीवन जग की जड़ता को ।

वर्ग-भेद के नायक हो तुम,
सके न जान रहस्य अभी तक;
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब
मानव-सस्कृति के उन्नायक ।

कालकूट-मुख नहीं, सुधा की
धार इन्हीके उर से बहती;
वसुधा को मगलमय करती,
अद्भुत सजीवनी निकलती।

ये आंधी है, मलयानिल भी,
प्रलय और जीवन इनके कर;
इनको छू कर अमर होगये
कालकूटपायी शिवशकर।

नयनो मे करुणा की धारा
भीषण आग छिपी प्राणो मे;
तन-मन मे संसार पलटने
की हुंकार छिपी सासों में।

जीवन के अभिशाप, किन्तु ये
युग के अद्भुत वरदानी है;
यह दुर्बल है तन के, पर
मन के शाश्वत अभिमानी है।

इनके आगे है व्यर्थ तुम्हारे
अस्त्र-शस्त्र सब दुर्बल हैं;
संहार-शक्ति के साधन ये.
विज्ञान तुम्हारे निर्बल है।

ये करुणा के आख्यान धवल,
मानव जय के गान लिये है;
ये धरती के इन्सान सुघर
अन्तस्तल गतिवान लिये है।

इनके जीवन की मौत इन्हींके
आगे आगे चलती है;
ये पत्थर की है मूर्ति, जिन्दगी
इन पर रह-रह हंसती है।

इनके घर-बार निराले हैं
इनके इतिहास निराले हैं;
ये ज्ञानी भी विज्ञानी भी,
इनके इन्साफ निराले हैं।

ये धरती के है लाल, स्वर्ग के
दूत यही पर आये थे;
साधारण जन की कौन कहे,
भगवान स्वयं ही आये थे।

ये बलशाली, वैभवशाली,
अम्बर में ध्वजा उड़ाते है;
पर्वत के ऊंचे शिखरों से
विघ्नों को मार भगाते है।

ये कलाकार हैं जीवन के
संघर्षण के वरदानी है;
भर रही अमरता प्राणों में
नित मधुर प्रीति के पानी है।

ये सस्कृति की है कला,
विश्व के सूरज चाँद सितारे है;
दानवता के हैं शत्रु, इन्होने
मानव के दुश्मन मारे है।

ये युग-प्रभात मानवता के,
जीवन की निर्मल धारा है,
सत्यं, शिव, सुन्दरम् ने ही
इनका रूप सवारा है।

ये राजपाट की मर्यादा,
जगती की वसुधा इनकी है;
तुम व्यर्थ, तुम्हारा अहं व्यर्थ,
जगती की समता इनकी है।

ये हिल-मिल कर गाते हसते,
नित सुरपुर सुखद बनाते है;
पर-सुख-दुख के ये अ यासी
मधु मदाकिनी बहाते है।

जनमन पावन अमृत सरित मे
आओ आज नहाये हम;
सुन्दर भाव-विचार कर्म की
धारा आज बहाये हम।

युद्ध, शस्त्र, हिंसा सब छोड़ो,
यह संसार नया-सा कर दो;
भर दो स्नेह, शक्ति औ पौरुष,
पीड़ित मानव का दुख हर दो।

मंदाकिनी प्रेम की धारा,
मदाकिनी कर्म की कारा,
मानवता की मधुर शान्ति वह,
सारे जग का एक सहारा।

चलो चले उस ओर जहां पर,
जनता की जय-जयकार मधुर,
हर्षोल्लास विमुग्ध जहा पर,
खिल-खिल पड़ते कितने ही उर।

खिलते पुण्य प्रसून कि जिनमे
प्रेम भाव के मृदु नाते है;
आज स्वर्ग के देव धरा पर,
आने को नित ललचाते है।

आओ स्वर्ग देवता तुम भी,
सबका सबसे अभिनन्दन है;
कोई छोटा बड़ा न किंचित,
सबका सबसे अभिनन्दन है।

आज प्रेम की बजी बासुरी,
उठ दौड़ी गोपियाँ घरो से,
छोड़ सभी कुछ बँधी जारही—
उन्मादक शुचि दिव्य स्वरो से।

चलो व्यर्थ का भेद भाव तज,
लाज लिहाज सँकोच छोड़कर;
करे अहिंसाऽमृत का हम सब,
सहज पान इस क्षण छक छक कर।

छठा अङ्क

## संकेत

भय से दूरी बढती है, शक्ति से निकटता कम होती है और शक्तिशाली को जब यह भास होने लगे कि वह स्वयं से हारने लगा है तो उसका आन्तरिक द्वन्द्व उद्वेलित होने लगता है, उसमें ज्वार आता है, तूफान आता है, तारे टूटते है, धरती फटती है और तब मिलती है : शान्ति, सृष्टि, जीवन ।

यह स्वप्न नही है, जाग्रति है;
जो लखा, उसे सच पाता हू ।
यह मानव का विकराल वेश,
जलता ही उसको पाता हूँ ।

यह टेढी-मेढी रेखायें,
युग का इतिहास बताती है;
कुछ घटती है, कुछ बढती है,
कुछ धूमिल होती जाती है ।

कुछ पर जीवन के रग-बिरगे,
फूल फूलते जाते है;
कुछ खिलते है, कुछ झरते हैं,
कुछ यों ही मिटते जाते है ।

कुछ पर ये स्वर्ग बसाते हैं,
कुछ पर घर-द्वार बनाते है;
कुछ पर हिंसा, स्पर्धा के
मोहक संसार सजाते है।

कुछ पर आशा के रंग-बिरंगे
चित्र बनाये जाते है;
कुछ पर चेतनता के प्रतीक
ये महल उठाये जाते है।

यह मानव का वास्तविक रूप,
चल रहा इसी विधि जीवन है;
जिसमे अबोध उच्छ्वासों का
दिन रात होरहा नर्तन है।

वे कहते है यह जीवन है,
हम भी कहते यह जीवन है,
जीवन से जो कुछ मिलता है,
वह जीवन का ही बन्धन है।

फिर कैसी कुंज कुटी मेरी,
कैसे खिलते है फूल यहां;
किस पर बसत, पावस आकर,
बिखराता जाता धूल यहां।

यह रग-रलियो का मन भी क्या,
सुखमय होता है जीवन को;
यह क्रूर व्यंग्य, उपहास-जन्य,
ममता छलती है अपने को।

है रिक्त पात्र, सूना-सा घर,
चेतन छाया, यह माया है;
जिसमे बेसुध खोया मानव,
निज जीवन मे भरमाया है।

तुम इसे मानते हो जीवन,
जो धूम राग से जलता है,
जिसमे विश्वासों का प्रकाश
केवल वादों पर पलता है।

यह है प्रकाश : वे कहते है,
जो अंधियारे में रहते है;
यह है विकास : वे कहते है,
जो पखो पर ही उड़ते हैं।

जनता की जाग्रति का प्रकाश,
देखो तो कितना उदास है,
मारकाट, हत्या, हिंसा का
उठता चहुदिशि अट्टहास है।

लूटपाट छीना-झपटी यह,
हाहाकार मचा नित रहता;
कलह, क्रोध, ईर्ष्या में मानव
तड़प तड़प नित जलता रहता।

अरे कल्पना में भूले हम,
सच्चे पथ से दूर जारहे;
हम छाया के साथ विचरते,
सत् प्रकाश से दूर जारहे।

माना यह जीवन है मधुमय,
पर तेरा वरदान नही है;
तेरा "अह स्वय तेरा है,
वह जग का अभिमान नही है।

परदे में क्या छिपा हुआ है,
खोया यह छाया का मन है;
जिसके रूप-रूप मे लक्षित
कृत्रिमता का जगमग धन है।

क्लान्त मनुज का मन रोता है,
अपने इस उदास जीवन से;
उसे स्वयं नफरत होती है
अपने इस कृत्रिम जीवन से।

हाय, मनुज का यह चिन्तन भी
क्या परिवर्तित होता जाता ?
कही सत्य-सस्पर्श स्वय का
बधन कटु बनता ही जाता।

फिर क्या करे मनुज भूला है,
वह निज प्राणो से डरता है;
चेतनता से दूर भ्रमर के
फदे में जाकर फसता है।

क्या पाता है वहां हृदय की,
लाचारी ही रोती रहती;
क्षुधापूर्ति के साधन मे ही
दम्भ भावना छलती रहती।

यह इस युग की क्राति-किरण है,
आशा है, विश्वास नही है,
मानवता की भ्रमित भावना,
उसका स्वय प्रकाश नही है।

"औ' विकास" यह धोखा है सब,
नादानी है, परवशता है;
जन-मन की आखों के सम्मुख,
क्या पीड़न ही नैतिकता है ?

यह चेतनता यह मानवता
द्वेष-घृणा का भ्रमित रूप है;
जिस प्रकार मे वह खोया है,
जाग्रति का वह नग्न रूप है।

ऊंचे ऊंचे शैल-शिखर सब
बता रहे सागर गहरा है;
कौन सुने इस अघकार मे,
जग विद्रोही, युग बहरा है।

यह युग का नव चमत्कार है,
प्रतिहिसा मे मनुज खड़ा है;
आज यंत्र-तन्त्रों के बल से
स्वय मनुज पर मनुज चढा है।

आज मशीनों का जीवन है,
हर हर धड़ धड़ स्वर समूह है,
उगल रहा है आग गगन भी,
विश्व बन गया व्यथित व्यूह है।

और सभ्यता बढी जारही,
युग से आगे, मनु से आगे;
यहां चतुर्दिक झांक रहा है
सघर्षण जीवन से आगे।

यह घन घोष अरे क्रंदन है,
आज मनुजता कांप रही है;
बर्बरता का धुआं उठ रहा,
धरती रह रह हांफ रही है।

खंड-खंड होगई मनुजता,
निज स्वार्थो में पिसी जारही;
जड-चेतन के समीकरण में,
भातिक हित मे पिसी जारही।

चारों ओर वही चीत्कारे,
संयम के बन्धन टूट रहे;
राष्ट्र वर्ग औ जाति वर्ग पर,
भेदों के खर शर छूट रहे !!

शान्ति कहां ? मानव से पूछो,
घोर नरक-सा जन-जीवन है;
दैन्य दासता मूर्तिमान है,
रेंग रहा भूखा मानव है।

यह हिंसक है खा जायेगा
धरती के प्रसन्न मानव को;
विविध वर्ग राष्ट्रों में निर्मित,
हरण करेगा जन-जीवन को।

यह हिंसा का तुमुल नाद है,
घोर अनैतिकता छाई है;
बिखर रहे आदर्श धरा के,
घोर तमिस्रा घिर आई है।

बदल रहा युग, जन बदला है,
कंकालों की ध्वनि बदली है;
प्रलय-सृजन के स्वर बदले है,
महानाश की गति बदली है।

पर मानव अब भी पीछे है,
वाष्प धूम के अणु आगे हैं;
अभिलाषा के जर्जर तरुवर
लटक रहे, निज को साधे है।

और प्रकृति हँस रही यहाँ है,
अम्बर पर आया है कोई;
चन्द्र-सूर्य भयभीत होरहे,
नाच रहा प्रलयकर कोई।

किन्तु नही यह धूल धुन्ध है,
अधड़ है, यह कोलाहल है,
निज स्वार्थो मे छिड़ा युद्ध है,
धरता की अनमिल हलचल है।

यहाँ एक मानव ही ऐसा,
जो इस धरती का स्वामी है;
उसकी प्रबल प्रतिष्ठा ही के,
सारे प्राणी अनुगामी है।

उसका क्रोध, यही बस समझो,
जग मे हाहाकार मचाता;
एक बार क्या बार-बार वह,
नर-संहार रचाता आता।

चाह रहा वह जग मे केवल,
मेरा ही साम्राज्य रहे बस;
नर-नारी मेरी सम्पत्ति हो,
मेरा अचल सुहाग रहे बस।

मैं चाहूं तो हँसे जमाना,
आग लगादू तो जल जाये;
मेरा शस्त्र उठे यदि भू पर,
त्राहि-त्राहि चहुदिशि छाजाये।

किन्तु दिवस ऐसा भी आता,
उसका शस्त्र उसी पर गिरता,
उसकी सांस लपट बनती है,
प्रलय ज्वाल ज्वाला मे जलता।

फिर चीखता नही कोई है,
बन जाता सब कुछ मरघट है;
यह जन की जीवन-समाधि है,
रीता पड़ा यहा घट-घट है।

हाय मनुज, तू इस विधि-भूला,
तू भी तो मनु का मानव है;
अस्त्र-शस्त्र ये, जंत्र-तंत्र ये,
तेरे कल्मष के अवयव हैं।

तू भी करता है प्यार खूब,
उन्माद-सहित इस काया को,
तू निमग्न रक्षित रखने मे,
अपनी विरचित इस माया को ।

मनुज तू नही तुझमे ही तो,
खोया मानवता का धन है;
तू यदि आत्मप्रशासित हो जा,
तो घर तेरा ही नन्दन है ।

तू डरता है यदि अपने से,
तो तेरी यह नादानी है;
यह घृणा, द्वेष का विषम जहर ही
दानवता का पानी है ।

घृणा-द्वेष के अन्धड़ में तू,
अपना अहम विचार फेक दे;
सुख-दुख डूबी इस जगती में,
भुजबल का विस्तार फेंक दे ।

सातवाँ अङ्क

## संकेत

आज विज्ञान के सहारे, मानव जिस विषम स्थिति में पहुंच गया है, वहाँ तक कल्पनाओ की पहुंच भी पीछे पड़ गई है। अतएव यह जन-संस्कृति की मांग है कि हम लोक-कल्याण की मंगल-कामनाओ का आवाहन करें। संसार में आज कोई नहीं चाहता कि युद्ध हो, किन्तु दूसरी ओर यह भी कोई नहीं चाहता कि स्थायी शान्ति स्थापित होजाय ? ऐसी स्थिति मे विनाश के द्वार पर संसार पहुंच गया है; और यदि जरा सी भी भूल हुई, तो आयद्र महाप्रलय का दृश्य उपस्थित होने में विलम्ब न लगेगा, अतएव संसार को मन, वचन, कर्म से शान्ति की स्थापना करनी चाहिये। ऐसा पथ, जो सत्य अहिंसा को प्रशस्ति लिये हुये हो, संसार को, विनाश से बचाने के लिये निर्मित करना होगा और यही सिद्धि प्राप्त करनी होगी।



(प्रतिध्वनि)

हाय मनुज तू इस विधि भूला,
तू भी तो मनु का मानव है;
अस्त्र-शस्त्र ये, जत्र-तत्र ये,
तेरे ही कलमष अवयव है।

तू भी करता है प्यार खूब,
उन्माद-सहित इस काया को;
तू निमग्न रक्षित रखने में,
अपनी इस विरचित माया को।

मनुज तू नहीं, तुझमें ही तो,
खोया मानवता का मन है;
तू यदि आत्मप्रशासित हो जा,
तो घर तेरा ही नन्दन है।

तू डरता है यदि अपने से,
तो तेरी यह नादानी है,
यह घृणा-द्वेष का विषम जहर ही
दानवता का पानी है।

घृणा द्वेष के अन्धड में तू
अपना अहम् विचार फेक दे;
सुख-दुख मे डूबी जगती मे
भुजबल का विस्तार फेंक दे।

यही अहिसा का मानव है,
गाता है जो नये तराने;
जिसकी वाणी सर्व मुक्ति है,
जन-जन है उसके दीवाने।

यही अहिसा का मदिर है,
विश्व-मूर्ति मानवता है यह;
प्रेम तत्व से निर्मित प्रतिमा,
ज्ञान ज्योति सुन्दरता है यह।

अरे शान्ति सोई है इसमे,
मिट्टी के स्वर, मिट्टी गति है;
अरे जगत के प्राण-विधायक,
ध्येय प्राप्य है, साधन नति है।

आज उसीके लिये देव मैं,
व्यथा भार लेकर आया हू;
मंगलमय, तुम तो उदार हो!
हृदय भार लेकर आया हूं।

मेरे साधन छूट चुके है,
झूठे थे पापी वे मन के;
नागपाश मे बधे हुये वे,
कल्पित थे, बन्धन सब तन के ।

सच ही है मै ही डरता था,
अपने से, अपनी छाया से;
निशिदिन ही जलता रहता था,
घृणा-द्वेष ज्वला-माया से ।

आदर्शो का नाम स्वार्थ का,
केवल एक बहाना ही था;
वर्ग वर्ग मे उद्वेलन कर,
हेतु विकास मिटाना ही था ।

मैंने ही शस्त्रों के बल पर,
अंधकार यह फैलाया है;
लोक-सभ्यता के प्रसार मे,
मानव का खून बहाया है।

वृहत ज्ञान-विज्ञान बोझ से,
टूट रहा यह मनुज हृदय है;
यंत्रों की निर्मम कटुता को
समझा मैंने पूर्ण विजय है।

अरे घृणा से कितने ही,
मनुजों के मैंने मन काटे हैं;
शक्ति-हीन करने को उनको,
भेद विभेदों मे बाटे हैं।

एक नही बहुतो पर मैने
अविरत निज अधिकार किया है,
किन्तु हृदय के ही सम्मुख तो
उनका भी प्रतिकार लिया है।

आज हिंस्र अणु-बल के नीचे
कितने जन असहाय पड़े है;
किन्तु मनुजता के आगे वे
मानस से जा दूर खड़े है।

उनका तो सब कुछ मेरा है,
दाता है, पर सदय नही हैं;
वह सब कुछ ही हो सकते हैं,
पर वह सचमुच हृदय नही है।

हृदय हा, हृदय पाने को ही
आतुर हू मै व्याकुल भी हूँ,
पीकर घूट लहू का भी मै,
प्यासा भी हू, आकुल भी हूँ।

प्यासा हूँ मै, भूखा भी हूँ,
आग लगाकर मै जलता हूँ;
मुझे बचाने मत आओ तुम,
अपनी ज्वाला मे जलता हूँ।

मुझे शान्ति मदिर जाने दो,
मुझको कोई बुला रहा है,
उधर अहिसा के मानव का,
परम शान्त ध्वज लहर रहा है।

जय हो मानव,
शक्ति तुम्हारी !
जन जीवन,
मनव हितकारी !!

टूटे बन्धन
रूढि रीति के !
मिटे भाव,
छल छद्म नीति के !!

मिटा दैन्य
तम मोहकता का;
बुझा ताप
जग की जड़ता का ।

खिले फूल,
विकसित जीवन के।
झरे पात,
सूखे उपवन के!!

हो प्रभात,
इस अधकार में।
मिले शान्ति,
जग महा ज्वार में!!

हो ज्ञान चूर्ण
मानव-विरोध का!
हो मान यहां,
निर्माण बोध का!!

आओ प्रकाश,
युग को लाओ !
नीरसता मे,
रस बरसाओ !!

सब मिटे यहाँ,
सघर्ष, द्वन्द्व !
आवे बसत,
फूलें दिगत !!

हे शिल्पकार,
तुम भरो प्राण !
हे छन्दकार,
शुचि रचो गान !!

हे मानव, तुम्ही विधाता हो,
जीवन मे लाते परिवर्तन;
तुमसे ही नित होता रहता
क्षण-क्षण मे नव-नव आवर्तन ।

जय हो आदि शक्ति मानव की,
मुकुटहीन नव शोभा वाली,
झोपड़ियों के बुझते दीपक,
करते है जिनकी रखवाली ।

कहता है इतिहास अमर है,
नाम यहां शुचि मानवता का;
खंडहर देखो चीख रहे हैं,
नित लेकर नाम विधाता का ।

इन्ही पत्थरो मे अकित है
नाम अमर उस बलिदानी का,
कोटि कठ निशिदिन गाते है
नाम अडिग उस अभियानी का।

आज अमित उस वलिदानी से,
वलिदान मागने आया हूँ,
आज धवल उस अभियानी से,
अभियान माँगने आया हूँ।

नही मागता हूँ अपने हित,
पापो की यहां छपाई मै;
वृथा भार देकर उनको
का करता हूँ कदराई मैं।

किन्तु मांगता हूँ जन-मन को,
मानवता से प्यार करूँ मैं;
जांति पांति-मय-भेद भाव से,
उठ ऊपर अभिसार करूँ मैं।

वे सब मेरे होजायें बस,
शिला नहीं, चेतन मानव पर;
समता की जो सीख दे सकें,
हृदय एकता की इस जग पर।

युग-युग का वैषम्य मिटे,
दीनता मिटे प्राणों की सारी;
जगती की मूर्छित-सी प्रतिमा,
सजग सजीव बने अति न्यारी।

वह जीवन का गीत बोल दे,
घृणा द्वेष मन के मिट जाये,
भावो की गरिमा मे, मन के,
विविध पाश सब कट छट जाये।

युग कहता यह, मै कहता हूँ,
आज मनुज को राह दिखाओ;
वह अपने को भूल रहा है,
उसे लक्ष्य का ज्ञान कराओ।

आज समय बदला है भव का,
अखिल धरा में क्रान्ति होरही;
जग की सबसे बड़ी समस्या,
प्रति मानस की शान्ति होरही।

अभी होरहा युग प्रभात है,
नवयुग का नेता आता है,
सत्य अहिसा के मदिर से,
जन का अभिनेता आता है।

जय होवे अभिनव मानव की,
परम शान्ति साधन-सम्बल की;
जय जीवन आदर्श व्योम की,
आत्मोत्भव सत्याग्रह बल की।

युग को अब नव दृष्टि चाहिये,
विश्व मूर्ति नव सृष्टि चाहिये;
जहा स्वप्न साकार होउठे,
सुन्दर, शिव का रूप चाहिये।

हो परिवर्तित परम शील मे,
गतानुगति जडता जीवन की,
मिटे अदृष्टि, दृष्टि नवला हो,
रहे न अब विस्मृति तन मन की।

आज शोक को हर्ष बनाओ,
आज कर्म को ज्ञान बनाओ;
जो मानव मे सत्य रह सके,
ऐसा भव का रूप बनाओ।

एक सभी का, सब सब ही के,
कौन बिगाना है इस घर मे,
हम समझे, सोचे औ देखे,
खोये फिरते अपने घर मे।

हम मानव है जग-जीवन के,
दुख के सुख के, मम भागी हैं,
सबके सग मे सुखी बने जो,
मानवता वह बड़भागी है।

आज कुटिल मानव से भी
गगा की धार निकल सकती है।
किसी "राम" के चरण-स्पर्श से,
शिला अहिल्या बन सकती है।

अब तक जीता गया न कोई,
बल वालो की जड भाषा से;
एक न प्रश्न अभी तक सुलझा,
हिंसा की निष्ठुर भाषा से।

मिट्टी पर अधिकार सभी का,
मिट्टी का तन, मन है मेरा,
जब तक रहे सौख्य बरसावे,
जग चिडिया है रैनबसेरा।

कहाँ शक्ति का राज्य रहा,
घृणा-द्वेष मे सब जल जाता,
मिलते है अधिकार यहा सब,
दीप प्रेम का जब जल जाता।

शस्त्र नही, मानव का मन है,
जिसे छिपाया जा सकता है;
दिल की जहा परीक्षा होगी,
उसे भुलाया जा सकता है।

एक तुम्हारे बोझिल दिल से
फूट रही खूनी धारा है,
रोको रोको, उसे विनय से,
बिलख रहा, मानव सारा है।

अरे घृणा से नही, प्रेम से,
यहा शक्ति भन की मिलती है;
जो दुखियो के दुख हरता है,
उसे भक्ति जन की मिलती है।

कौन यहा किसका स्वामी है,
किसका मन, किसका यह धन है;
कहाँ शक्ति इनके बाहो मे,
भ्रमित यहा फिरता जन-जन है।

सब अपना खाते है, सच है,
नही सहारा देता कोई;
डूब रही हो, नाव भँवर मे,
नही सहारा देता कोई।

सब अपने पथ के राही है,
चलना है अधिकार हमारा;
कौन छूटता, मिलता कोई,
कभी न मिलता यहाँ किनारा।

आज यहां कल रहे वहां पर,
यही हमारा अपना क्रम है;
तुम समझो यह मेरा घर है,
हम समझे यह कोरा भ्रम है।

किन्तु नहीं यह घर मेरा है,
किन्तु नहीं यह घर तेरा है;
मेरा तेरा, तेरा मेरा
यही "अहं" का भ्रम डेरा है।

आओ दो क्षण इस छाया में,
कर लें बातें पिछले पन की;
जहां मिले थे इससे पहले,
सुधि बिसार अपने तन-मन की।

यह धरती कितनी शीतल है,
तुम कितने अच्छे भाई हो;
कितने अच्छे नर-नारी हैं,
भाई से बढ़कर भाई हो।

तुम हो वही, वही जो मै हू,
तुममें मुझमे भेद नही है;
यह तो नाम कर्म से आये,
इसमे कुछ सन्देह नही है ।

पन्थ अनेको, लक्ष्य एक है,
अत. चले सब हिलमिल साथी;
सुख मे दुख में एक रहे हम,
जलती रहे प्रेम की बाती ।

जाओ, वहा बुलाता कोई,
अपना कह कर गले लगाओ;
जो अधयारे मे भटके है,
उनके घर में दीप जलाओ ।

जो प्यासे है उन्हे पिला दो,
प्रेम सुधा की बूदे मधुमय,
जो भूखे है, उन्हे खिलादो,
अपने कर से अशन मनोमय।

युग-युग से हम सदा एक है,
हम जीवन से सदा एक है;
आज नही, हम आदि काल से,
मनुज एक है, मनुज एक है।

आज हमे मानव की ममता,
प्रेम चाहिये, नेह चाहिये;
प्रभो, शक्ति दो मुझे भक्ति दो,
जन-जन का सुस्नेह चाहिये।

नही किसीको लघु मै समझू,
नही स्वय को अधिकारी मै,
सबको अपना-सा ही मानू,
सद्‌गुणशाली सुविचारी मै।

कभी स्वप्न या जाग्रति मे भी,
नही पराया होवे कोई;
मिट्टी के हम, मिट्टी के तुम,
यही सुनाना होवे कोई।

मेरा मन बन जाय जगत का,
विश्व-शान्ति मेरी आकाक्षा;
मेरा तन बन जाय क्षितिज का,
सत्य ध्येय हो मेरी वाछा।

मेरी कला गीत बन जाये,
मुक्ति तत्व की हो जो वाणी;
मेरी कविता प्राण फूँक दे,
जाग उठे मुरदा-सा प्राणी।

मेरे कर्म ज्ञान बन जाये,
मुझे प्रगति मे प्रतिपल रति हो;
जो समाज को न्याय-दान दे,
ऐसी निर्भय जग-सस्कृति हो।

दैन्य-अभाव-गलित जीवन को,
मेरे पुण्य नष्ट कर डालें;
जहा दीनता मूर्तिमान हो,
मेरे प्राण उसे पी डालें।

मेरा पथ निर्विघ्न शान्त हो,
मिले साम्य मेरे जीवन मे;
मनुज नही, मानव का बन्धन,
वह है मुक्ति-स्रोत जन-जन मे।

रहे आत्मविश्वास निरन्तर,
जन-दर्शन-समुदाय जयी हो;
जड़-चेतन के सगम पथ पर,
शुभ आदर्श-विकास जयी हो।

निखिल जीव समता का साधक,
सत्य-अहिसा-पथ की जय हो;
प्रति जन की मन-भावन गति मे
जन की जय, मानव की जय हो! !